संवैधानिक नैतिकता: भारतीय लोकतंत्र की आत्मा की खोज

(Constitutional Morality: Searching the Soul of Indian Democracy)



लेखक: *Anand Singh Dhami*

प्रस्तुतकर्ता: *Indian Philosophy & Ethics*

विषय क्षेत्र: *Constitutional Morality, Indian Constitution, Democracy, Fundamental Rights, Judiciary, Constituent Assembly, Dr. Ambedkar, Kesavananda Bharati Case, Navtej Singh Johar Case, Social Justice, Secularism, Civic Duties*

संक्षिप्त परिचय:- संवैधानिक नैतिकता का अर्थ है; भारत के संविधान में निहित मूल्यों, आदर्शों और सिद्धांतों के प्रति निष्ठा, सम्मान और व्यवहारिक पालन। यह केवल कानूनों के अनुपालन तक सीमित नहीं है, बल्कि न्याय, स्वतंत्रता, समानता, बंधुत्व और मानव गरिमा जैसी संवैधानिक भावनाओं को व्यक्तिगत आचरण, शासन और सामाजिक जीवन में आत्मसात करने की अपेक्षा करती है।
डॉ. भीमराव आंबेडकर ने संविधान सभा में स्पष्ट किया था कि संविधान तभी सफल होगा जब समाज में संवैधानिक नैतिकता विकसित होगी। इसी कारण इसे भारतीय लोकतंत्र की रीढ़ माना जाता है, क्योंकि यही लोकतांत्रिक संस्थाओं को मनमानी, बहुसंख्यक वर्चस्व और सत्ता के दुरुपयोग से बचाती है।

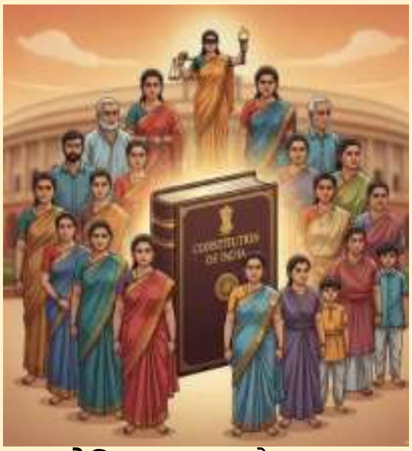
🔗 ऑनलाइन विस्तृत लेख:
https://indianphilosophyethics.blogspot.com/2027/05/constitutional-morality.html

1. प्रस्तावना: केवल कानून नहीं, एक जीवंत संकल्प

कल्पना कीजिए 26 नवंबर 1949 के उस ऐतिहासिक दिन की। संविधान सभा के सदस्यों ने उस दस्तावेज़ को अंतिम रूप से स्वीकार किया, जिस पर तीन साल से अधिक समय तक अटूट मेहनत और गहन चिंतन हुआ था। डॉ. अंबेडकर ने अपने अंतिम भाषण में एक बेहद महत्वपूर्ण चेतावनी दी थी। उन्होंने कहा था कि भारत को एक दिन राजनीतिक लोकतंत्र (**एक व्यक्ति, एक वोट**) और सामाजिक-आर्थिक लोकतंत्र (सामाजिक एवं आर्थिक न्याय) के बीच विरोधाभास का सामना करना पड़ सकता है।

उन्होंने सचेत किया था कि यदि हम इस विरोधाभास को हल नहीं कर पाए, तो जो लोग इस असमानता से पीड़ित होंगे, वे लोकतंत्र के उस ढांचे को ध्वस्त कर देंगे जिसे इस सभा ने इतनी मेहनत से बनाया है।

यहाँ डॉ. अंबेडकर ने जिस '**संरचना**' की बात की, वह सिर्फ कागज़ पर लिखे लेखों और अनुच्छेदों का ढांचा नहीं था; वह एक आध्यात्मिक और नैतिक ढांचा था। वह ढांचा था '**संवैधानिक नैतिकता**' (Constitutional Morality) का। भारतीय लोकतंत्र का सफर सिर्फ चुनाव कराने, सरकारें बनाने या अदालतों में मुकदमेबाजी तक सीमित नहीं है। यह एक गहरे और सूक्ष्म सिद्धांत पर टिका है, जो संविधान की हर पंक्ति में सांस लेता है।



क्या है संवैधानिक नैतिकता?

साधारण शब्दों में, संवैधानिक नैतिकता का अर्थ है, संविधान के शाब्दिक नियमों से आगे बढ़कर उसकी '**मूल भावना**' को आत्मसात करना। यह उन आदर्शों पर चलने की प्रतिबद्धता है जिन पर हमारा राष्ट्र टिका है: न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व। यह इस विश्वास का नाम है कि संविधान सिर्फ सरकार चलाने का '**मैनुअल**' नहीं, बल्कि एक न्यायपूर्ण और समावेशी समाज बनाने का '**नैतिक खाका**' है।

- जब कोई सत्ता बहुमत के दम पर अल्पसंख्यकों की आवाज दबाने की कोशिश करती है, तो वह संवैधानिक नैतिकता का उल्लंघन है।
- जब कोई नागरिक अपने अधिकारों का दावा तो करता है, लेकिन दूसरों के अधिकारों या अपने मौलिक कर्तव्यों को भूल जाता है, तो वह भी इस नैतिकता से दूर हो जाता है।
- जब लोकतांत्रिक संस्थान अपनी स्वायत्तता और तटस्थता खो देते हैं, तब यह नैतिकता कमजोर पड़ती है।

यह ब्लॉग पोस्ट इसी '**आत्मा**' की खोज का एक प्रयास है। हम न केवल इसे समझेंगे, बल्कि यह भी जानेंगे कि यह हमारे रोजमर्रा के जीवन और राष्ट्र के भविष्य के लिए क्यों अनिवार्य है। यह कोई शुष्क सैद्धांतिक चर्चा नहीं, बल्कि हमारे जीवंत लोकतंत्र के अस्तित्व की पड़ताल है।

2. मूलभूत समझ: संवैधानिक नैतिकता का सार क्या है?

संवैधानिक नैतिकता (Constitutional Morality) का अर्थ केवल संविधान के नियमों का पालन करना नहीं है, बल्कि उन आदर्शों के प्रति अटूट निष्ठा रखना है जिनसे हमारा लोकतंत्र जीवित है। यह अवधारणा हमें यह सिखाती है कि शासन का कोई भी अंग चाहे वह विधायिका हो या न्यायपालिका, संविधान की भावना के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता। अक्सर हम '**कानून के शासन**' की बात करते हैं, लेकिन संवैधानिक नैतिकता उससे एक कदम आगे बढ़कर '**न्यायपूर्ण शासन**' की वकालत करती है। यह प्रशासन में पारदर्शिता, जवाबदेही और लोकतांत्रिक मूल्यों को समाहित करने का एक नैतिक ढांचा प्रदान करती है।

डॉ. अंबेडकर के अनुसार, संवैधानिक नैतिकता कोई प्राकृतिक गुण नहीं है, बल्कि इसे विकसित करना पड़ता है। यह शासन करने वालों और नागरिकों के बीच एक ऐसा समझौता है, जहाँ आपसी मतभेदों के बावजूद संविधान के प्रति सम्मान सर्वोपरि होता है। इसका सार यह है कि समाज में व्याप्त 'सामाजिक नैतिकता' (जो कभी-कभी रूढ़िवादी हो सकती है) के बजाय 'संवैधानिक मूल्यों' को वरीयता दी जाए। जब हम संवैधानिक नैतिकता की बात करते हैं, तो हम केवल एक कानूनी दस्तावेज की बात नहीं कर रहे होते, बल्कि एक ऐसे जीवंत दर्शन की बात कर रहे होते हैं जो हर नागरिक की स्वतंत्रता और गरिमा की रक्षा का संकल्प लेता है। यह बहुमत के शासन में भी अल्पसंख्यकों और वंचितों के अधिकारों को सुरक्षित रखने का एक मजबूत स्तंभ है।

2.1. संवैधानिकता बनाम संवैधानिक नैतिकता

संवैधानिकता (Constitutionality) और संवैधानिक नैतिकता के बीच का अंतर '**अक्षर**' और '**आत्मा**' का अंतर है। संवैधानिकता एक कानूनी और यांत्रिक प्रक्रिया है, जो केवल यह देखती है कि क्या कोई कानून संविधान की धाराओं के अनुसार तकनीकी रूप से वैध है। वहीं, संवैधानिक नैतिकता यह देखती है कि क्या वह कानून न्याय, समानता और बंधुत्व की मूल भावना के अनुरूप है। सरल शब्दों में, कोई निर्णय कागजों पर '**संवैधानिक**' हो सकता है, लेकिन यदि वह मानवीय मूल्यों या सामाजिक न्याय के खिलाफ है, तो वह '**संवैधानिक नैतिकता**' की कसौटी पर विफल माना जाएगा। यह सिद्धांत हमें केवल कानूनी औपचारिकता में उलझने के बजाय सही और गलत के विवेकपूर्ण अंतर को समझने की प्रेरणा देता है।

2.2. एक गतिशील एवं जीवंत सिद्धांत

संवैधानिक नैतिकता कोई स्थिर या जड़ विचार नहीं है, बल्कि यह एक '**जीवंत सिद्धांत**' (Living Doctrine) है। यह 1950 के समय की समझ तक सीमित नहीं है, बल्कि समय के साथ बदलती सामाजिक परिस्थितियों और आधुनिक चुनौतियों के साथ विकसित होता रहता है। जैसे-जैसे समाज प्रगति करता है, संविधान की व्याख्याएं भी अधिक समावेशी और व्यापक होती जाती हैं। उदाहरण

के लिए, निजता का अधिकार या व्यक्तिगत गरिमा से जुड़े नए न्यायिक निर्णय इसी गतिशील नैतिकता का परिणाम हैं। यह सिद्धांत सुनिश्चित करता है कि हमारा संविधान पुरानी रूढ़ियों में न फँसे, बल्कि आज के संदर्भ में प्रासंगिक बना रहे और आने वाली पीढ़ियों की आकांक्षाओं को न्यायपूर्ण आधार प्रदान करता रहे।

मुख्य बिंदु इस प्रकार से हैं:

- **कानूनी औपचारिकता से परे**: संवैधानिक नैतिकता सिर्फ 'क्या कानूनी है' नहीं, बल्कि '**क्या नैतिक और सही है**' इस प्रश्न से जुड़ी है।
- **मूल्य-आधारित दृष्टिकोण**: यह संविधान में निहित न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्यों को केंद्र में रखती है।
- **गतिशील व्याख्या**: यह एक कठोर सिद्धांत नहीं है, बल्कि समय और समाज के साथ बदलता विकसित होता है।
- **सभी हितधारकों पर लागू**: यह सिर्फ सरकार या न्यायपालिका पर ही नहीं, बल्कि विधायिका, नौकरशाही, मीडिया और हर नागरिक पर लागू होती है।
- **लोकतंत्र की आत्मरक्षा का तंत्र**: यह बहुमत के अहंकार को रोककर लोकतंत्र को खुद से बचाने का एक तरीका है।

---

3. ऐतिहासिक जड़ें: संविधान सभा की बहसों में निहित आदर्श

संवैधानिक नैतिकता की अवधारणा कोई नवीन विचार नहीं है, बल्कि इसकी जड़ें हमारे संविधान की निर्माण प्रक्रिया और उन गहन बहसों में गहराई से समाई हुई हैं। संविधान सभा की ये चर्चाएँ मात्र तकनीकी अनुच्छेदों का संकलन नहीं थीं, बल्कि एक नए राष्ट्र की नैतिक और चारित्रिक नींव रखने का महान अनुष्ठान थीं। संविधान निर्माताओं का मानना था कि एक जीवंत लोकतंत्र के लिए केवल एक लिखित संविधान पर्याप्त नहीं है, बल्कि उस संविधान को चलाने वाली एक '**नैतिक चेतना**' का होना भी अनिवार्य है।

इसी चेतना को सुनिश्चित करने के लिए मौलिक अधिकारों, न्यायपालिका की स्वतंत्रता और केंद्र-राज्य संबंधों में संतुलन जैसे प्रावधानों को शामिल किया गया। ये प्रावधान शासन की निरंकुश प्रवृत्तियों को रोकने के उपकरण थे। संविधान सभा के सदस्यों का यह दृढ़ विश्वास था कि संविधान एक सामाजिक-आर्थिक क्रांति का वादा है, और इसे सफल बनाने के लिए शासन के हर अंग को संवैधानिक मूल्यों के प्रति अपनी जवाबदेही निभानी होगी।

3.1. डॉ. बी.आर. अंबेडकर का दृष्टिकोण

डॉ. बी.आर. अंबेडकर ने 4 नवंबर 1948 को संविधान सभा में अपने ऐतिहासिक भाषण के दौरान



'**संवैधानिक नैतिकता**' शब्द का पुरजोर उल्लेख किया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से चेतावनी दी थी कि भारत जैसे विविध और जाति-आधारित समाज में *'संवैधानिक नैतिकता'* कोई प्राकृतिक गुण नहीं है, बल्कि इसे परिश्रम से विकसित करना होगा। उनके अनुसार, भारतीयों में *'सामाजिक नैतिकता'* (जो अक्सर जाति, धर्म और परंपराओं से प्रेरित होती है) तो विद्यमान है, लेकिन एक लोकतांत्रिक गणराज्य के लिए आवश्यक 'संवैधानिक नैतिकता' अभी निर्मित होनी बाकी थी।

अंबेडकर का मानना था कि लोकतंत्र केवल सरकार का एक स्वरूप नहीं है, बल्कि यह मूलतः 'सामुदायिक जीवन का एक तरीका' और 'मानवीय गरिमा का सम्मान' है। उन्होंने जोर दिया कि यदि हम इस नैतिकता को नहीं सीखेंगे, तो संविधान का ढांचा कितना भी मजबूत क्यों न हो, वह विफल हो सकता है।

3.2. अन्य संविधान निर्माताओं की आवाजें

अंबेडकर के साथ-साथ संविधान सभा के अन्य प्रमुख नेता भी इसी नैतिक दृष्टि से ओत-प्रोत थे। पंडित जवाहरलाल नेहरू ने '**उद्देश्य प्रस्ताव**' के माध्यम से जिस भारत की परिकल्पना की, वह स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व के मूल्यों पर आधारित था। डॉ. राजेंद्र प्रसाद ने संविधान की प्रस्तावना को इसकी 'आत्मा' माना, जो नैतिकता का उच्चतम शिखर है।

अल्लादी कृष्णस्वामी अय्यर, के.एम. मुंशी और एम. अनंतशयनम आयंगर जैसे सदस्यों ने इस बात पर निरंतर बल दिया कि संविधान औपनिवेशिक शासन की निरंकुशता को समाप्त करने का माध्यम है। उनकी सबसे बड़ी चिंता यह थी कि कहीं स्वतंत्र भारत में भी सत्ता का केंद्रीकरण निरंकुशता में न बदल जाए। इसलिए, उन्होंने एक ऐसी शासन व्यवस्था पर जोर दिया जहाँ शक्ति का प्रयोग हमेशा '**न्याय**' और '**लोक कल्याण**' के दायरे में रहकर किया जाए। इन नेताओं के लिए संविधान केवल एक कानूनी दस्तावेज नहीं, बल्कि राष्ट्र के चरित्र का प्रतिबिंब था।

मुख्य बिंदु इस प्रकार से हैं:

- **अंबेडकर की स्पष्ट चेतावनी**: उन्होंने संविधान सभा में ही '*संवैधानिक नैतिकता*' की कमी को भारत के लिए बड़ा खतरा बताया था।
- **सामाजिक नैतिकता से भिन्न**: उन्होंने पारंपरिक सामाजिक मानदंडों और लोकतांत्रिक संवैधानिक मूल्यों के बीच स्पष्ट अंतर रेखांकित किया।

· **संविधान सभा का सामूहिक सपना**: अधिकांश सदस्यों की दृष्टि में संविधान एक नैतिक खाका था, न कि महज एक प्रशासनिक कोड।

· **औपनिवेशिक मानसिकता से मुक्ति**: संविधान निर्माता चाहते थे कि नया भारत निरंकुशता के बजाय नैतिक जिम्मेदारी पर चले।

· **संस्थागत डिजाइन में निहित**: मौलिक अधिकार, न्यायपालिका की स्वतंत्रता आदि प्रावधान इसी नैतिकता को बनाए रखने के लिए रखे गए थे।

---

4. न्यायिक आयाम: नैतिकता को परिभाषित करते न्यायालय

भारतीय लोकतंत्र की यात्रा में, सर्वोच्च न्यायालय केवल कानून का संरक्षक ही नहीं, बल्कि संवैधानिक नैतिकता का संवाददाता और संरक्षक भी रहा है। जब विधायिका और कार्यपालिका के कृत्य संविधान के मूल आदर्शों से भटकने लगते हैं, तो न्यायपालिका ने अक्सर संवैधानिक नैतिकता के इस मार्गदर्शक सिद्धांत को आगे रखकर देश को सही दिशा दिखाई है। यह एक सतत चलने वाली न्यायिक चर्चा रही है, जहाँ न्यायाधीशों ने किताबी कानून से ऊपर उठकर संविधान की '**आत्मा**' की व्याख्या की है।

4.1· केशवानंद भारती मामला: मूलभूत ढांचे की अवधारणा का उदय

1973 का केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य मामला भारतीय संवैधानिक इतिहास का वह काला अक्षर है, जिसने हमेशा के लिए यह तय कर दिया कि संसद की संशोधन की शक्ति भी सीमित है। इस मामले की पृष्ठभूमि में वह दौर था जब संसद मौलिक अधिकारों सहित संविधान के किसी भी हिस्से में संशोधन करने के लिए स्वयं को सर्वशक्तिमान मान रही थी। सर्वोच्च न्यायालय के तत्कालीन मुख्य न्यायाधीश एस.एम. सीकरी की अध्यक्षता वाली 13 सदस्यीय संविधान पीठ ने 7-6 के बहुमत से एक ऐतिहासिक फैसला सुनाया। न्यायालय ने माना कि संसद संविधान के मूलभूत ढांचे (Basic Structure) को नष्ट या कमजोर करने वाला संशोधन नहीं कर सकती।

यह '**मूलभूत ढांचा**' क्या है? इसे किसी एक परिभाषा में बाँधा नहीं गया, बल्कि इसे एक जीवंत और लचीली अवधारणा बनाया गया। इसमें संविधान की प्रस्तावना में निहित न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व जैसे मूल्य; न्यायपालिका की स्वतंत्रता; धर्मनिरपेक्षता; लोकतंत्र और गणराज्य का स्वरूप; संघीय ढाँचा; और मौलिक अधिकारों का सार शामिल हैं। दरअसल, न्यायालय ने यहाँ संवैधानिक नैतिकता को ही एक ठोस कानूनी सुरक्षा कवच पहना दिया। यह संदेश स्पष्ट था: संविधान सिर्फ नियमों की किताब नहीं है, इसकी एक नैतिक रीढ़ है, और उस रीढ़ की रक्षा सर्वोच्च प्राथमिकता है।

इस फैसले के प्रमुख निहितार्थ थे:

· **संविधान की सर्वोच्चता स्थापित**: इसने संसदीय बहुमत की संप्रभुता पर स्पष्ट सीमा रेखा खींच दी, यह घोषित करते हुए कि संविधान स्वयं सर्वोच्च है, न कि उसे बनाने वाली संस्था।

- **न्यायिक समीक्षा का विस्तार**: न्यायपालिका को यह अधिकार मिला कि वह किसी भी संविधान संशोधन की इस '**मूलभूत ढांचे**' के आधार पर जांच कर सकती है। यह न्यायिक सक्रियता का एक शक्तिशाली औजार बन गया।
- **बहुमत के अहंकार पर लगाम**: यह सिद्धांत लोकतंत्र को स्वयं से बचाता है। यह इस बात की गारंटी देता है कि चुनावी बहुमत में आई कोई भी सरकार संविधान के मूल नैतिक सिद्धांतों को नष्ट करके तानाशाही का रास्ता नहीं अपना सकती।
- **संवैधानिक नैतिकता का कानूनीकरण**: मूलभूत ढांचे की अवधारणा ने संवैधानिक नैतिकता को एक अमूर्त दर्शन से उठाकर एक ठोस, न्यायालय द्वारा लागू किए जाने वाले कानूनी सिद्धांत में बदल दिया।

4.2· नवतेज सिंह जौहर मामला: व्यक्ति की गरिमा का विजयोत्सव

सितंबर 2018 में, पांच-न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने एक ऐतिहासिक फैसले में भारतीय दंड संहिता (IPC) की धारा 377 के उस हिस्से को रद्द कर दिया, जो सहमति से वयस्कों के बीच समलैंगिक संबंधों को अपराध मानता था। यह फैसला केवल एक पुराने औपनिवेशिक कानून का अंत नहीं था; यह संवैधानिक नैतिकता की एक जीवंत अभिव्यक्ति और सामाजिक नैतिकता पर उसकी जीत थी।

न्यायमूर्ति डी. वाई. चंद्रचूड़ ने अपने ऐतिहासिक निर्णय में स्पष्ट किया: "**संवैधानिक नैतिकता उन नैतिक प्रतिबद्धताओं को दर्शाती है जो संविधान के मूल्यों का निर्माण करती हैं।**" उन्होंने '**संवैधानिक नैतिकता**' और '**सामाजिक नैतिकता**' के बीच एक स्पष्ट विभाजन रेखा खींची। सामाजिक नैतिकता अक्सर बहुमत के पूर्वाग्रहों, रूढ़ियों और परंपराओं से आकार लेती है। संवैधानिक नैतिकता इनसे ऊपर उठकर, संविधान के सार्वभौमिक मूल्यों व्यक्ति की गरिमा, स्वायत्तता, निजता और समानता का पालन करती है।

इस फैसले ने कई मायनों में संवैधानिक नैतिकता को पुनर्परिभाषित किया:

- **गरिमा केंद्र में**: फैसले ने '**गरिमामय अस्तित्व के अधिकार**' को संवैधानिक नैतिकता का केंद्रीय सिद्धांत बना दिया। न्यायमूर्ति चंद्रचूड़ ने लिखा, "**गरिमा का अधिकार व्यक्ति के मूल्य और सम्मान को मान्यता देता है।**"
- **निजता का अधिकार**: इसने निजता के मौलिक अधिकार (जिसे 2017 के पुट्टस्वामी फैसले में मान्यता मिली थी) को और मजबूत किया, और दिखाया कि यौन रुझान व्यक्ति की निजता का एक अभिन्न हिस्सा है।
- **भेदभाव का विरोध**: फैसले ने स्पष्ट किया कि किसी व्यक्ति के यौन रुझान के आधार पर भेदभाव करना, समानता के अधिकार और भेदभाव के विरुद्ध संवैधानिक गारंटी का सीधा उल्लंघन है।

· **समावेशन का दर्शन**: इसने संविधान की प्रस्तावना में '**सभी**' शब्द की ताकत को पूरी तरह से सामने लाया, यह सुनिश्चित करते हुए कि कोई भी नागरिक अपनी पहचान के कारण समाज की मुख्यधारा से बाहर नहीं किया जा सकता।

4.3· समकालीन व्याख्याएं और विकास

· इंदिरा साहनी (मंडल) मामला: सामाजिक न्याय और सीमाओं का संतुलन

1992 के इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ मामले (आमतौर पर मंडल केस के नाम से जाना जाता है) में, सर्वोच्च न्यायालय के नौ न्यायाधीशों की पीठ ने एक बार फिर संवैधानिक नैतिकता की कसौटी पर एक जटिल सामाजिक-राजनीतिक मुद्दे को परखा। मुद्दा था पिछड़े वर्गों के लिए सरकारी नौकरियों में 27% आरक्षण की वी.पी. सिंह सरकार की घोषणा की संवैधानिक वैधता। न्यायालय ने, विभिन्न बारीकियों के साथ, आरक्षण नीति को बरकरार रखा, लेकिन इसे कड़े संवैधानिक सिद्धांतों के दायरे में बाँध दिया। यह फैसला संवैधानिक नैतिकता के दो पहलुओं के बीच सही संतुलन स्थापित करने का प्रयास था: एक ओर सामाजिक न्याय और समावेशन (अनुच्छेद 15(4) और 16(4) के माध्यम से) और दूसरी ओर दक्षता और समान अवसर का सिद्धांत (अनुच्छेद 335)।

न्यायालय ने कई महत्वपूर्ण शर्तें रखीं, जैसे कि '**क्रीमी लेयर**' (आर्थिक रूप से संपन्न तबके) को आरक्षण के दायरे से बाहर रखना, आरक्षण की एक समय सीमा तय करना, और यह सुनिश्चित करना कि आरक्षण की कुल सीमा 50% से अधिक न हो (कुछ असाधारण परिस्थितियों को छोड़कर)। इन शर्तों के पीछे न्यायालय का उद्देश्य यह था कि सामाजिक न्याय का उपाय ही संविधान के अन्य मूल्यों को नष्ट न कर दे।

इस मामले ने संवैधानिक नैतिकता को इस प्रकार समृद्ध किया:

· **प्रतिकारात्मक न्याय का औचित्य**: इसने माना कि ऐतिहासिक भेदभाव और बहिष्कार को दूर करने के लिए विशेष उपाय (आरक्षण) संवैधानिक नैतिकता का ही हिस्सा हैं।

· **संवैधानिक व्यावहारिकता**: इसने दिखाया कि नैतिक सिद्धांतों का अनुप्रयोग कठोर और अव्यवहारिक नहीं, बल्कि लचीला और वास्तविकता के धरातल पर खरा उतरने वाला होना चाहिए।

· **अधिकारों का संतुलन**: इसने एक महत्वपूर्ण सबक दिया कि एक वर्ग के अधिकार दूसरे वर्ग के अधिकारों को पूरी तरह समाप्त नहीं कर सकते। संवैधानिक नैतिकता सभी हितों के बीच एक न्यायसंगत संतुलन खोजने की मांग करती है।

· एस.आर. बोम्मई मामला: धर्मनिरपेक्षता एक मूलभूत ढांचा

1994 के एस.आर. बोम्माई बनाम भारत संघ मामले ने भारतीय संविधान के सबसे महत्वपूर्ण सिद्धांत धर्मनिरपेक्षता को न केवल मजबूत किया, बल्कि इसे संविधान के '**मूलभूत ढांचे**' का एक अनिवार्य हिस्सा घोषित कर दिया। यह मामला बाबरी मस्जिद विध्वंस के बाद की स्थिति में उत्पन्न हुआ था, जहाँ केंद्र सरकार ने भाजपा शासित चार राज्यों की सरकारों को बर्खास्त कर दिया था। नौ न्यायाधीशों की पीठ ने अपने फैसले में एक स्पष्ट और दृढ़ स्वर में कहा कि धर्मनिरपेक्षता केवल राज्य की धार्मिक तटस्थता नहीं है, बल्कि यह एक सकारात्मक अवधारणा है जो सभी धर्मों के प्रति समान सम्मान सुनिश्चित करती है। न्यायालय ने माना कि धर्म को राजनीति से अलग रखना संविधान की मूल भावना है। किसी भी राजनीतिक दल या सरकार का धर्म के आधार पर भेदभावपूर्ण रवैया या सांप्रदायिक एजेंडा चलाना, संविधान के मूल ढांचे का उल्लंघन होगा और राष्ट्रपति शासन लगाने का एक वैध आधार हो सकता है।

इस फैसले ने संवैधानिक नैतिकता के लिहाज से कई मजबूत आधार प्रदान किए:

· **धर्मनिरपेक्षता का उन्नयन**: इसे एक राजनीतिक सिद्धांत से उठाकर एक संवैधानिक नैतिक अनिवार्यता बना दिया, जिसकी अवहेलना नहीं की जा सकती।

· **बहुलवाद की रक्षा**: इसने भारत की '**एकता में अनेकता**' की संकल्पना को कानूनी बल दिया। संवैधानिक नैतिकता यह मांग करती है कि राज्य सभी धर्मों और संस्कृतियों के प्रति एक संरक्षक की भूमिका निभाए, न कि किसी एक का पक्ष ले।

· **चुनावी राजनीति के लिए दिशा-निर्देश**: इसने स्पष्ट किया कि चुनाव जीतने के लिए सांप्रदायिक भावनाओं या धार्मिक घृणा का इस्तेमाल करना संवैधानिक नैतिकता के सर्वथा विपरीत है।

· जस्टिस के.एस. पुट्टस्वामी (निजता) मामला: डिजिटल युग में नैतिकता

2017 के जस्टिस के.एस. पुट्टस्वामी बनाम भारत संघ मामले में, नौ न्यायाधीशों की संविधान पीठ ने सर्वसम्मति से फैसला सुनाया कि निजता का अधिकार भारतीय संविधान के अनुच्छेद 21 (जीवन और व्यक्तिगत स्वतंत्रता के अधिकार) के तहत एक मौलिक अधिकार है। यह फैसला आधार कार्ड और डिजिटल डेटा संग्रहण के युग में अत्यधिक प्रासंगिक था।

न्यायालय ने माना कि निजता व्यक्ति की गरिमा, स्वायत्तता और स्वतंत्रता का आधार है। एक व्यक्ति के बारे में जानकारी, और उस पर नियंत्रण, उसकी पहचान का हिस्सा है। इस अधिकार को मान्यता देना संवैधानिक नैतिकता की एक आधुनिक व्याख्या थी। यह इस बात को स्वीकार करता है कि तकनीकी प्रगति के साथ, व्यक्ति की स्वतंत्रता के लिए नए खतरे पैदा होते हैं, और संविधान के मूल्यों की रक्षा के लिए उनकी व्याख्या समय के साथ विकसित होनी चाहिए।

इस फैसले का संवैधानिक नैतिकता पर गहरा प्रभाव पड़ा:

· **मौलिक अधिकारों का विस्तार**: इसने मौलिक अधिकारों की सूची में एक नया आयाम जोड़ा, दर्शाया कि संविधान एक जीवंत दस्तावेज है।

· **राज्य की शक्ति पर सीमा**: इसने स्पष्ट किया कि डेटा एकत्र करने जैसे राज्य के हित भी, व्यक्ति की निजता के मौलिक अधिकार पर अनुचित रूप से अतिक्रमण नहीं कर सकते। किसी भी ऐसी कार्रवाई को कानूनी औचित्य, आवश्यकता और आनुपातिकता की कसौटी पर खरा उतरना होगा।

· **तकनीकी नैतिकता का आधार**: इसने भारत में डेटा सुरक्षा और साइबर नैतिकता पर बहस की नींव रखी, यह दर्शाते हुए कि संवैधानिक नैतिकता डिजिटल दुनिया में भी लागू होती है।

निष्कर्षतः, भारतीय न्यायपालिका ने संवैधानिक नैतिकता को एक स्थिर, सैद्धांतिक विचार से विकसित करके एक गतिशील, शक्तिशाली और व्यावहारिक कानूनी औजार बना दिया है। यह न्यायिक दृष्टि हमें यह याद दिलाती है कि हमारा संविधान केवल शक्तियों का बँटवारा नहीं करता, बल्कि यह एक नैतिक ब्रह्मांड की रचना करता है, जिसमें हर नागरिक की गरिमा, स्वतंत्रता और समानता सर्वोपरि है। यह न्यायालय ही था जिसने इस ब्रह्मांड की सीमाओं को परिभाषित किया और उसकी रक्षा के लिए अदृश्य दीवारें खड़ी कीं।

---

5. मूल सिद्धांत: संवैधानिक नैतिकता के चार स्तंभ

संवैधानिक नैतिकता कोई अमूर्त दर्शन नहीं है जो केवल न्यायालयों की फाइलों में दबा रहता है। यह एक जीवंत आचार संहिता है, जिसके कुछ मूलभूत स्तंभ हैं। इन स्तंभों पर ही हमारे लोकतंत्र की इमारत टिकी हुई है। यदि इनमें से किसी एक में भी दरार आती है, तो पूरी संरचना कमजोर होने लगती है। आइए, इन चार प्रमुख स्तंभों को समझते हैं।

5.1· सामाजिक न्याय और समावेशिता: केवल वर्गीकरण नहीं, वास्तविक सशक्तिकरण

संविधान की प्रस्तावना में 'सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक न्याय' का वादा महज एक भावनात्मक वाक्य नहीं है; यह भारतीय राज्य की सबसे बड़ी नैतिक प्रतिबद्धता है। संवैधानिक नैतिकता की दृष्टि से, सामाजिक न्याय का अर्थ केवल कानूनी अधिकार देना या आरक्षण जैसी प्रतिकारात्मक नीतियाँ लागू करना ही नहीं है। इसका वास्तविक अर्थ है वंचित और हाशिए के समुदायों को सशक्त बनाना, उन्हें सम्मान और अवसरों की वह समान मेज प्रदान करना, जहाँ वे बिना किसी डर या पूर्वाग्रह के बैठ सकें।

यह स्तंभ इस बात पर जोर देता है कि राज्य की भूमिका एक निष्पक्ष दर्शक की नहीं, बल्कि एक सक्रिय संवर्धक की है। अनुच्छेद 15, 16, 17 (छुआछूत का अंत), 23-24 (शोषण के विरुद्ध) और

46 (कमजोर वर्गों के हित) इसी नैतिक दायित्व की कानूनी अभिव्यक्तियाँ हैं। डॉ. अंबेडकर ने कहा था कि जब तक सामाजिक लोकतंत्र नहीं होगा, राजनीतिक लोकतंत्र टिकाऊ नहीं रह सकता। संवैधानिक नैतिकता यह माँग करती है कि हम समाज के उन तबकों की अनदेखी न करें, जिनकी आवाज़ इतिहास में दबा दी गई थी।

• **व्यवहार में न्याय**: इसका मतलब है कि केवल नौकरियों में कोटा दे देना ही काफी नहीं है। शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और आजीविका तक पहुँच सुनिश्चित करना, ताकि एक स्तर का मैदान तैयार हो सके।

• **गरिमा का अधिकार**: सामाजिक न्याय का सबसे बड़ा लक्ष्य है हर व्यक्ति को सम्मानजनक जीवन जीने का अवसर देना। छुआछूत, उत्पीड़न या भेदभाव का कोई भी रूप संवैधानिक नैतिकता के विरुद्ध है।

• **सकारात्मक कार्रवाई की नैतिकता**: आरक्षण जैसे उपायों को 'कृपा' नहीं, बल्कि ऐतिहासिक अन्याय के प्रति नैतिक प्रतिकार और समाज को संतुलित करने के लिए एक जरूरी कदम के रूप में देखना चाहिए।

• **सशक्तिकरण का लक्ष्य**: अंतिम लक्ष्य यह होना चाहिए कि प्रतिकारात्मक उपाय एक दिन अपनी आवश्यकता खो दें, क्योंकि समाज खुद ही इतना समावेशी और न्यायपूर्ण बन जाएगा।

5.2· बहुलवाद और सहिष्णुता: 'एकता में अनेकता' का व्यवहारिक रूप

भारत एक सभ्यता है, जो अपनी विविधता में एकता के लिए जानी जाती है। संविधान ने इस सांस्कृतिक सत्य को एक राजनीतिक और नैतिक सिद्धांत में ढाल दिया है। संवैधानिक नैतिकता का दूसरा स्तंभ यह मानता है कि राष्ट्र की ताकत उसकी एकरूपता में नहीं, बल्कि उसकी विविधता के सामंजस्य में निहित है। यह सिर्फ भाषा, धर्म या रीति-रिवाजों का सम्मान करने तक सीमित नहीं है। यह एक गहरी सहिष्णुता और बहुलवादी मानसिकता की माँग करता है, जहाँ अलग विचारों और जीवनशैलियों को सिर्फ बर्दाश्त नहीं किया जाता, बल्कि उन्हें संरक्षित और प्रोत्साहित किया जाता है।

अनुच्छेद 25 से 30 (धार्मिक स्वतंत्रता और अल्पसंख्यक अधिकार) इसी स्तंभ की नींव हैं। लेकिन नैतिकता का तकाजा है कि बहुमत समुदाय भी एक संवैधानिक नागरिक के रूप में, अल्पसंख्यकों के अधिकारों और उनकी अस्मिता की रक्षा करने में अपनी भूमिका समझे। जब कोई सांप्रदायिक दंगा होता है, या कोई समुदाय अपने आपको असुरक्षित महसूस करता है, तो सिर्फ कानून नहीं, बल्कि संवैधानिक नैतिकता का भी सीधा उल्लंघन होता है।

• **सांस्कृतिक संरक्षण का दायित्व**: राज्य का यह नैतिक दायित्व है कि वह भाषाई और सांस्कृतिक अल्पसंख्यकों की विरासत को बचाने में मदद करे।

· **राजनीति से धर्म का पृथक्करण**: संवैधानिक नैतिकता स्पष्ट करती है कि धर्म एक निजी विश्वास है, और राज्य का कोई आधिकारिक धर्म नहीं हो सकता। राजनीतिक फैसले धार्मिक मान्यताओं से प्रेरित नहीं होने चाहिए।

· **विचारों का संघर्ष, पहचान का नहीं**: एक स्वस्थ लोकतंत्र में विचारों का टकराव हो सकता है, लेकिन संवैधानिक नैतिकता यह सुनिश्चित करती है कि यह टकराव किसी की धार्मिक या सांस्कृतिक पहचान पर हमला बनकर न उभरे।

· **सह-अस्तित्व की संस्कृति**: यह नागरिकों से अपेक्षा करता है कि वे अपने पड़ोसी, सहकर्मी या सहपाठी की अलग प्रथाओं के प्रति उदार और जिज्ञासु बनें, न कि संदेहशील या शत्रुतापूर्ण।

5.3· नागरिकों के मौलिक कर्तव्य: अधिकारों के साथ जिम्मेदारियाँ

42वें संविधान संशोधन (1976) द्वारा जोड़े गए अनुच्छेद 51A में नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों की सूची दी गई है। अक्सर इन्हें कम महत्व दिया जाता है, लेकिन संवैधानिक नैतिकता की दृष्टि से ये अधिकारों के दूसरा पहलू हैं। आप अपने अधिकारों की माँग तभी तक कर सकते हैं, जब तक आप दूसरों के अधिकारों और राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का भी सम्मान करते हैं। यह स्तंभ लोकतंत्र को एक सड़क के दो-तरफ़ा ट्रैफिक की तरह देखता है, जहाँ सबको अपनी लेन का ध्यान रखना होता है।

संविधान का सम्मान करना, राष्ट्रीय प्रतीकों का आदर करना, सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखना, वैज्ञानिक दृष्टिकोण अपनाना, प्राकृतिक पर्यावरण की रक्षा करना, और सामूहिक हित के लिए काम करना ये सभी कर्तव्य संवैधानिक नैतिकता को जन-जन तक पहुँचाने के मार्ग हैं। जब एक नागरिक जानबूझकर सार्वजनिक संपत्ति को नुकसान पहुँचाता है, या अफवाह फैलाता है, तो वह न केवल कानून तोड़ रहा होता है, बल्कि संवैधानिक नैतिकता का भी उल्लंघन कर रहा होता है।

· **सक्रिय नागरिकता**: कर्तव्य निष्क्रिय पालन की चीज नहीं हैं। इनमें सामाजिक बुराइयों के खिलाफ आवाज उठाना, गलत काम में सहयोग न देना और रचनात्मक कार्यों में भाग लेना शामिल है।

· **नैतिक शिक्षा का आधार**: संविधान के कर्तव्य बच्चों को दी जाने वाली नैतिक शिक्षा का मूल आधार होने चाहिए, ताकि अगली पीढ़ी जिम्मेदार नागरिक बन सके।

· **अधिकार और कर्तव्य का समन्वय**: यह स्तंभ हमें याद दिलाता है कि स्वतंत्रता का अर्थ मनमानी नहीं है। मेरी स्वतंत्रता का अंत वहाँ शुरू होता है, जहाँ दूसरे का अधिकार शुरू होता है।

· **राष्ट्र-निर्माण में भागीदारी**: यह कर्तव्य नागरिकों को यह एहसास दिलाते हैं कि देश सिर्फ सरकार का नहीं, हम सबका है, और इसकी उन्नति में हर किसी की साझेदारी है।

5.4· लोकतांत्रिक आचरण की संस्कृति: बहुमत का अहंकार नहीं

यह शायद संवैधानिक नैतिकता का सबसे सूक्ष्म, पर सबसे महत्वपूर्ण स्तंभ है। लोकतंत्र केवल हर पाँच साल में वोट डालने की प्रक्रिया नहीं है। यह एक निरंतर चलने वाली आचरण की संस्कृति है। इसका मतलब है कि सत्ता में बैठे लोगों का व्यवहार, विपक्ष की भूमिका, मीडिया की जिम्मेदारी और नागरिकों की भागीदारी सभी कुछ एक नैतिक ढाँचे के भीतर होनी चाहिए। बहुमत में आने का मतलब यह नहीं है कि आप जो चाहे वह कर सकते हैं। बल्कि, इसका मतलब है कि आपको अल्पमत की आवाज़ सुनने, उसका सम्मान करने और उसे दबाने के बजाय उसे सशक्त करने की जिम्मेदारी और भी बढ़ जाती है।

यह स्तंभ संसद और विधानसभाओं में शालीन बहस, विपक्ष को अपनी बात रखने के पूरे अवसर, सरकारी निर्णयों में पारदर्शिता, और जवाबदेही की माँग करता है। जब सत्ताधारी दल विपक्ष की हर बात को रोकने की कोशिश करता है, या सरकारी मशीनरी का दुरुपयोग करता है, तो वह इस स्तंभ को कमजोर करता है। संवैधानिक नैतिकता यहाँ '**लोकतांत्रिक मर्यादाओं**' की बात करती है।

• **विरोध का अधिकार और कर्तव्य**: विपक्ष का काम सिर्फ विरोध करना नहीं, बल्कि रचनात्मक आलोचना और वैकल्पिक नीतियाँ पेश करना है। सत्ता पक्ष का काम है उसे गंभीरता से सुनना।

• **संवाद की प्रधानता**: हर मतभेद का अंतिम हल बहस और संवाद होना चाहिए, न कि बल प्रयोग या प्रताड़ना। यह संसद से लेकर गाँव की पंचायत तक लागू होता है।

• **सत्ता की विनम्रता**: जो सत्ता में हैं, उन्हें यह याद रखना चाहिए कि सत्ता एक 'अवसर' है राष्ट्र की सेवा का, न कि 'सुविधा' व्यक्तिगत लाभ उठाने की।

• **संस्थागत सम्मान**: लोकतांत्रिक आचरण की संस्कृति में न्यायपालिका, चुनाव आयोग, नियंत्रक और महालेखा परीक्षक (CAG) जैसी स्वतंत्र संस्थाओं के निर्णयों और भूमिका का सम्मान करना शामिल है, भले ही वे सत्ता पक्ष के पक्ष में न हों।

इन चार स्तंभों पर मजबूती से खड़ा होकर ही भारतीय लोकतंत्र अपनी विविधता, जटिलता और विशालता के बावजूद एक सुसंगत और न्यायपूर्ण समाज का निर्माण कर सकता है। ये स्तंभ हमें यह ताकत देते हैं कि हम केवल कानून का पालन करने वाले नागरिक न बनकर रहें, बल्कि संविधान की मूल भावना को जीने वाले नागरिक बनें।

---

6. वर्तमान संदर्भ: आज के भारत में चुनौतियाँ और प्रश्न

संविधान का निर्माण एक आदर्श भविष्य की कल्पना करके किया गया था, लेकिन उसे जीना होता है एक अत्यंत जटिल वर्तमान में। आज का भारत वह भारत नहीं है जो 1950 में था। तेजी से डिजिटल होती अर्थव्यवस्था, गहराता सामाजिक बदलाव, नए मीडिया का उभार और वैश्विक प्रभावों ने हमारे लोकतंत्र के सामने नई परिस्थितियाँ पैदा कर दी हैं। इन परिस्थितियों में, संवैधानिक नैतिकता के सिद्धांतों की

परीक्षा लगातार हो रही है। यह खंड उन प्रमुख चुनौतियों और सवालों पर विचार करेगा जो हमारे संवैधानिक आदर्शों को आज परख रहे हैं।

6.1· बहुमतवाद बनाम संवैधानिक नैतिकता: सत्ता की संवैधानिक सीमाएं

लोकतंत्र में बहुमत का शासन एक मूलभूत सिद्धांत है। लेकिन जब यह बहुमतवाद '**टायरेनी ऑफ द मेजोरिटी**' यानी 'बहुमत के अत्याचार' में बदलने लगता है, तब संवैधानिक नैतिकता खतरे में पड़ जाती है। आज के राजनीतिक परिदृश्य में एक बड़ी चिंता यह है कि कहीं चुनावी जनादेश को संपूर्ण नैतिक और संवैधानिक वैधता न मान लिया जाए। बहुमत में आई सरकार का यह कर्तव्य है कि वह संविधान के सभी नागरिकों बहुमत और अल्पमत दोनों के प्रति वचनबद्धता को याद रखे।



वास्तविक चुनौती तब उठती है जब सत्ता पक्ष यह महसूस करने लगता है कि उसके पास लोकतांत्रिक जनादेश है, इसलिए उसे किसी भी नैतिक या संस्थागत अड़चन को नहीं मानना चाहिए। संसद में विपक्ष की आवाज़ दबाना, स्वतंत्र संस्थाओं (जैसे चुनाव आयोग, न्यायपालिका, मीडिया) पर दबाव डालना, या फिर कानूनों को बिना पर्याप्त बहस के जल्दबाजी में पास करना ये सभी लक्षण बहुमत के अहंकार के हैं। संवैधानिक नैतिकता हमें यह याद दिलाती है कि लोकतंत्र का उद्देश्य केवल सत्ता प्राप्त करना नहीं, बल्कि उस सत्ता का प्रयोग संविधान के मूल्यों के अनुरूप करना है। जब नागरिकता संशोधन अधिनियम (CAA) जैसे विवादास्पद कानूनों पर संसद में व्यापक चर्चा के बजाय जल्दबाजी दिखाई जाती है, या जब अल्पसंख्यक समुदाय खुद को राज्य की नीतियों से लक्षित महसूस करते हैं, तो यह सवाल उठता है कि क्या बहुमत का फैसला संवैधानिक नैतिकता के सिद्धांतों विशेषकर धर्मनिरपेक्षता और समानता का पालन कर रहा है।

· **अल्पसंख्यक अधिकारों का क्षरण**: बहुमतवाद का सबसे बड़ा खतरा अल्पसंख्यकों (धार्मिक, भाषाई, सांस्कृतिक) के अधिकारों और सुरक्षा की भावना पर है। संवैधानिक नैतिकता राज्य को इन समुदायों का संरक्षक बनने का निर्देश देती है।

· **संघीय ढाँचे पर दबाव**: केंद्र सरकार द्वारा राज्यों की स्वायत्तता का अतिक्रमण, विशेषकर विपक्षी शासन वाले राज्यों के साथ तनाव, संविधान द्वारा निर्धारित संघीय संतुलन के लिए चुनौती है।

· **न्यायपालिका और अन्य संस्थाओं पर प्रभाव**: बहुमतवादी रवैया तब और खतरनाक हो जाता है जब यह न्यायपालिका की नियुक्तियों और कार्यप्रणाली में हस्तक्षेप करने, या मीडिया की स्वतंत्रता को कमजोर करने की कोशिश करता है।

6.2· सोशल मीडिया और सार्वजनिक प्रवचन: नफरत और गलत सूचना का प्रसार

सूचना क्रांति ने लोकतंत्र को सशक्त बनाया है, लेकिन सोशल मीडिया ने संवैधानिक नैतिकता के लिए एक अभूतपूर्व चुनौती भी खड़ी कर दी है। यह एक ऐसा स्थान बन गया है जहाँ घृणा, गलत सूचना (फेक न्यूज) और सांप्रदायिक उन्माद तेजी से फैल सकते हैं। संवैधानिक नैतिकता की माँग है कि सार्वजनिक प्रवचन तर्कसंगत, सम्मानजनक और सत्य पर आधारित हो। लेकिन सोशल मीडिया अक्सर उग्र भावनाओं, व्यक्तिगत हमलों और षड्यंत्र के सिद्धांतों का अखाड़ा बन जाता है।

जब कोई नेता या प्रभावशाली व्यक्ति सोशल मीडिया पर संविधान विरोधी या घृणापूर्ण बयान देता है, तो वह न केवल कानून तोड़ रहा होता है, बल्कि संवैधानिक नैतिकता का भी गला घोंट रहा होता है। '**ट्रोल आर्मियां**' द्वारा आलोचकों को डराना-धमकाना, धार्मिक अल्पसंख्यकों के खिलाफ नफरत भरे मीम्स बनाना, या चुनाव के समय जानबूझकर गलत सूचना फैलाना ये सभी लोकतंत्र की नैतिक नींव को कमजोर करते हैं। सबसे बड़ी चुनौती यह है कि इन गतिविधियों को अक्सर '**अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता**' के ढाल के पीछे छुपा दिया जाता है। संवैधानिक नैतिकता हमें यह समझाती है कि स्वतंत्रता का अर्थ दूसरों की गरिमा और सुरक्षा को नष्ट करने की आजादी नहीं है।

· **गुमनामी का दुरुपयोग**: सोशल मीडिया पर गुमनामी ने जिम्मेदारीहीन टिप्पणी और हिंसा भड़काने वाली सामग्री को बढ़ावा दिया है।

· **लोकतांत्रिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप**: गलत सूचना के माध्यम से मतदाताओं को प्रभावित करना, चुनावी प्रक्रिया की अखंडता के लिए एक गंभीर खतरा है।

· **सार्वजनिक विश्वास का क्षरण**: लगातार झूठ और विषैले प्रचार से लोगों का सार्वजनिक संस्थाओं, मीडिया और यहाँ तक कि एक-दूसरे पर भी विश्वास उठने लगता है, जो एक स्वस्थ लोकतंत्र के लिए घातक है।

6.3· संस्थाओं की स्वायत्तता और विश्वास: एक स्वस्थ लोकतंत्र का आधार

लोकतंत्र सिर्फ सरकार नहीं, बल्कि स्वतंत्र संस्थाओं का एक पारिस्थितिकी तंत्र है। न्यायपालिका, चुनाव आयोग, केंद्रीय जाँच ब्यूरो (CBI), प्रवर्तन निदेशालय (ED), रिजर्व बैंक (RBI), और मीडिया जैसी संस्थाएं इस तंत्र की रीढ़ हैं। संवैधानिक नैतिकता की एक अनिवार्य शर्त है कि ये संस्थाएं निष्पक्ष, स्वायत्त और अपने निर्णयों में निर्भीक रहें। उन्हें सत्तारूढ़ दल के एजेंट के रूप में नहीं, बल्कि संविधान के संरक्षक के रूप में काम करना चाहिए।

वर्तमान समय में, इन संस्थाओं की स्वायत्तता और विश्वसनीयता पर गंभीर सवाल उठ रहे हैं। आरोप लगते हैं कि CBI और ED जैसी जाँच एजेंसियों का इस्तेमाल विपक्षी नेताओं पर दबाव बनाने के लिए किया जा रहा है। मीडिया के एक बड़े हिस्से पर '**गोदी मीडिया**' होने के आरोप लगते हैं, जो सरकार के प्रोपेगैंडा का माध्यम बन गया है। चुनाव आयोग की तटस्थता पर भी सवाल उठाए जाते रहे हैं। जब नागरिकों को इन संस्थाओं पर भरोसा नहीं रह जाता, तो लोकतंत्र की नैतिक नींव हिलने लगती

है। संवैधानिक नैतिकता यह माँग करती है कि सत्ता में बैठे लोग इन संस्थाओं की स्वतंत्रता का सम्मान करें और उन्हें कमजोर करने की कोशिश न करें।

· **नियुक्ति प्रक्रियाओं में पारदर्शिता की कमी**: न्यायपालिका और अन्य नियामक निकायों में शीर्ष पदों पर नियुक्तियाँ अक्सर विवादों में रहती हैं, जिससे उनकी निष्पक्षता पर संदेह पैदा होता है।

· **संसाधनों और प्रभाव का दुरुपयोग**: सत्ता पक्ष द्वारा सरकारी संसाधनों और मीडिया प्रभाव का इस्तेमाल चुनावी लाभ के लिए करना, लोकतांत्रिक प्रक्रिया को विकृत करता है।

· **'इंस्टीट्यूशनल डेडलॉक'**: जब संस्थाएं एक-दूसरे से टकराव की स्थिति में आ जाती हैं या काम करना बंद कर देती हैं, जैसा कि कभी-कभी केंद्र और राज्य सरकारों के बीच होता है, तो शासन प्रभावित होता है।

6.4· नागरिक असंतोष और विरोध का अधिकार: रचनात्मक असहमति का स्थान

किसी भी लोकतंत्र में असहमति और विरोध उसकी सेहत के लिए जरूरी हैं। संविधान अनुच्छेद 19 के तहत शांतिपूर्ण विरोध और अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का अधिकार देता है। संवैधानिक नैतिकता इस अधिकार को न केवल मान्यता देती है, बल्कि इसे लोकतंत्र का एक पवित्र तत्व मानती है। यह समझती है कि जब सरकार की नीतियों से नागरिकों को आपत्ति होती है, तो उन्हें अपनी बात रखने का हक है।

हाल के वर्षों में, नागरिकता संशोधन अधिनियम (CAA), कृषि कानूनों और अन्य मुद्दों पर देश भर में बड़े पैमाने पर विरोध प्रदर्शन हुए। इन विरोधों के दौरान देखा गया कि कई बार राज्य की प्रतिक्रिया अत्यधिक कठोर रही। प्रदर्शनकारियों पर गैर-जिम्मेदाराना तरीके से राजद्रोह (सेडिशन) के मुकदमे दायर करना, इंटरनेट बंद करना, या पुलिस की कार्रवाई में अत्यधिक बल प्रयोग करना, ये सब संवैधानिक नैतिकता के सिद्धांतों के खिलाफ जाते हैं। विरोध को दबाने के बजाय, राज्य का कर्तव्य है कि वह उसकी बात सुनें और उसके कारणों को समझे। जब '**राष्ट्रद्रोही**' या '**विदेशी एजेंट**' जैसे लेबल आसानी से आलोचकों पर चिपका दिए जाते हैं, तो यह एक डरावना माहौल बनाता है जहाँ स्वतंत्र विचार दब जाते हैं।

· **अभिव्यक्ति पर अनुचित प्रतिबंध**: UAPA और राजद्रोह कानून जैसे कड़े कानूनों का इस्तेमाल अक्सर विरोध को कुचलने के लिए किया जाता है, न कि वास्तविक राष्ट्रीय सुरक्षा खतरों से निपटने के लिए।

· **मीडिया की भूमिका**: विरोध प्रदर्शनों की कवरेज करते समय मीडिया का पक्षपातपूर्ण रवैया, जनता को सही जानकारी नहीं दे पाता और समाज को बाँट देता है।

· **संवाद की जगह दमन**: विरोध को सुनने और उस पर बातचीत करने के बजाय, उसे दबाने की कोशिश लोकतांत्रिक संस्कृति को नुकसान पहुँचाती है और असंतोष को और गहरा करती है।

इन चुनौतियों से यह स्पष्ट होता है कि संवैधानिक नैतिकता कोई ऐसी चीज नहीं है जो एक बार स्थापित हो गई तो हमेशा बनी रहेगी। इसकी रक्षा करना एक सतत संघर्ष है, जिसमें हर नागरिक, हर संस्था और हर सरकार की भूमिका है। अगला खंड इसी भूमिका पर केंद्रित होगा; कि एक आम नागरिक इस नैतिकता की रक्षा में कैसे योगदान दे सकता है।

---

7. हमारी भूमिका: एक सामान्य नागरिक के रूप में हम क्या कर सकते हैं?

अक्सर ऐसा लगता है कि संविधान, सरकार और न्यायपालिका जैसी बड़ी चीज़ें हमसे बहुत दूर हैं। हम सोचते हैं कि देश की दिशा तो नेताओं और न्यायाधीशों के हाथ में है। लेकिन यह एक भ्रम है। लोकतंत्र में सबसे बड़ी ताकत अंततः जनता की होती है, और संवैधानिक नैतिकता की सबसे मजबूत नींव हर एक नागरिक की नैतिक चेतना में होती है। डॉ. अंबेडकर ने भी चेतावनी दी थी कि संविधान कितना भी अच्छा क्यों न हो, अगर उसे चलाने वाले लोग अच्छे नहीं हैं, तो वह विफल हो जाएगा। तो फिर, एक आम आदमी, जिसके पास न तो राजनीतिक सत्ता है और न ही कानूनी अधिकार, वह इस 'आत्मा' की रक्षा में कैसे योगदान दे सकता है? आइए कुछ ठोस और संभव कदमों पर विचार करते हैं।

7.1· जागरूक शिक्षा और संवाद: नींव का निर्माण

सबसे पहला और सबसे महत्वपूर्ण कदम है खुद को शिक्षित करना और दूसरों तक ज्ञान पहुँचाना। संवैधानिक नैतिकता की लड़ाई सबसे पहले अज्ञानता और उदासीनता के खिलाफ है।

· **संविधान को जानें**: केवल प्रस्तावना और मौलिक अधिकारों को ही नहीं, बल्कि मौलिक कर्तव्यों, राज्य के नीति निर्देशक सिद्धांतों और संविधान के बुनियादी ढांचे की अवधारणा को भी समझें। आजकल ऑनलाइन कई विश्वसनीय संसाधन उपलब्ध हैं।

· **चर्चा शुरू करें**: अपने परिवार के भोजन की मेज पर, दोस्तों के साथ कॉफी की चुस्कियों के बीच, या सोशल मीडिया पर (सकारात्मक तरीके से) संविधान के मूल्यों पर बात करें। बहस नहीं, संवाद करें। सवाल पूछें: "क्या यह फैसला हमारे संविधान की भावना के अनुरूप है?"

· **ऐतिहासिक संदर्भ समझें**: संविधान सभा की बहसों को पढ़ें। यह समझना जरूरी है कि हमारे संविधान निर्माताओं ने जाति, धर्म, लिंग के आधार पर भेदभाव और अत्याचार झेले एक समाज को ध्यान में रखकर ये प्रावधान बनाए थे। यह ऐतिहासिक दृष्टि हमें संवैधानिक नैतिकता की जरूरत समझाती है।

· **गलत जानकारी से लड़ें**: जब आपको सोशल मीडिया पर कोई घृणा फैलाने वाला या संविधान विरोधी पोस्ट दिखे, तो उसे नजरअंदाज न करें। विनम्रता से, तथ्यों के साथ उसका जवाब दें। अगर आपको लगता है कि यह कानून विरोधी है, तो उसे रिपोर्ट करें।

7.2· सक्रिय नागरिकता और सामुदायिक भागीदारी: व्यवहार में उतारना

ज्ञान तभी सार्थक है जब वह कर्म में बदले। सक्रिय नागरिकता का मतलब है अपने अधिकारों का प्रयोग करना और अपने कर्तव्यों का निर्वाह करना, दोनों ही साथ-साथ।



· **सूचना का अधिकार (RTI) का प्रयोग करें**: यह संवैधानिक नैतिकता का एक शानदार औजार है। अगर आपके इलाके में कोई सरकारी योजना ठीक से लागू नहीं हो रही, सड़क नहीं बन रही, या आपको कोई शिकायत है, तो RTI के जरिए सवाल पूछें। यह सरकार को जवाबदेह बनाता है।

· **स्थानीय शासन में भाग लें**: ग्राम सभा, वार्ड समिति या नगर निगम की बैठकों में जाएँ। स्थानीय मुद्दों पर बोलें। यह समझें कि आपका वोट और आपकी आवाज़ सिर्फ संसद तक ही सीमित नहीं है।

· **सामाजिक भेदभाव का विरोध करें**: यह शायद सबसे कठिन, पर सबसे जरूरी कदम है। अगर आप अपने आस-पास, परिवार में या दफ्तर में जाति, धर्म या लिंग के आधार पर भेदभाव होते देखें, तो चुप न रहें। विनम्रतापूर्वक, लेकिन दृढ़ता से अपनी असहमति जताएँ। संवैधानिक नैतिकता की शुरुआत व्यक्तिगत संबंधों से ही होती है।

· **स्वयंसेवी कार्यों से जुड़ें**: किसी ऐसे एनजीओ या समूह के साथ जुड़ें जो शिक्षा, कानूनी सहायता, या सामाजिक न्याय के क्षेत्र में काम करता हो। गरीब बच्चों को पढ़ाना, लोगों को उनके कानूनी अधिकारों के बारे में बताना ये सब संविधान के मूल्यों को जमीन पर उतारने के तरीके हैं।

· **जिम्मेदार मतदाता बनें**: वोट डालते समय, उम्मीदवार की शिक्षा, चरित्र और कार्य के अलावा, उसके संवैधानिक रुख को परखें। क्या वह घृणा फैलाता है? क्या वह सभी समुदायों का सम्मान करता है? आपका वोट सिर्फ एक पार्टी के लिए नहीं, बल्कि संविधान के मूल्यों के लिए एक वोट होना चाहिए।

7.3· व्यक्तिगत आचरण में संवैधानिक मूल्यों को आत्मसात करना

संवैधानिक नैतिकता सिर्फ बाहरी कार्यों तक सीमित नहीं, बल्कि एक आंतरिक मानसिकता है। इसे हम अपने रोजमर्रा के व्यवहार में कैसे ला सकते हैं?

· **सम्मान का भाव**: हर व्यक्ति, चाहे उसकी नौकरी, पृष्ठभूमि या आर्थिक स्थिति कुछ भी हो, के प्रति आदर का भाव रखें। यह समानता के सिद्धांत का मूल है।

· **भेदभावपूर्ण मजाक न बनाएँ**: जाति, धर्म, लिंग, शारीरिक संरचना या यौन रुझान पर आधारित मजाक न करें, और न ही सहें। ये छोटे-छोटे व्यवहार ही बड़े भेदभाव की नींव होते हैं।

- **सहिष्णुता का अभ्यास**: जो विचार या जीवनशैली आपसे अलग है, उसे स्वीकार करना सीखें। असहमति हो सकती है, लेकिन दूसरे के अस्तित्व या गरिमा पर सवाल न उठाएँ।
- **पारदर्शिता और ईमानदारी**: अपने निजी और पेशेवर जीवन में ईमानदारी बनाए रखें। कर चोरी करना, रिश्वत देना या लेना, या गलत तरीके से लाभ उठाना ये सब संवैधानिक नैतिकता के विरुद्ध हैं, क्योंकि ये देश के संसाधनों और न्याय प्रणाली को कमजोर करते हैं।

निष्कर्ष रूप में, हमें यह समझना होगा कि संवैधानिक नैतिकता की लड़ाई दिल्ली या राज्यों की राजधानियों में नहीं, बल्कि हमारे अपने मन और हमारे अपने समुदाय में लड़ी जाती है। हर बार जब हम किसी भेदभाव का विरोध करते हैं, हर बार जब हम सही उम्मीदवार को वोट देते हैं, हर बार जब हम गलत जानकारी का सच्चाई से जवाब देते हैं; हम संविधान की आत्मा को थोड़ा और मजबूत करते हैं। यह कोई भव्य, एक दिन में पूरा होने वाला काम नहीं है। यह एक रोजमर्रा का, लगातार चलने वाला अभ्यास है। और इस अभ्यास में, हर नागरिक एक छात्र भी है और एक गुरु भी।

---

8. निष्कर्ष: एक सतत यात्रा, एक साझा जिम्मेदारी

हमने इस लंबी चर्चा में संवैधानिक नैतिकता की ऐतिहासिक जड़ों से लेकर उसके न्यायिक व्याख्याओं, मूल सिद्धांतों, वर्तमान चुनौतियों और अंततः हमारी व्यक्तिगत भूमिका तक का सफर तय किया है। एक बात स्पष्ट रूप से उभरकर सामने आती है: संवैधानिक नैतिकता कोई ऐसी मंजिल नहीं है जिसे हम एक बार प्राप्त करके भूल जाएँ। बल्कि, यह एक सतत यात्रा है, एक लगातार चलने वाला अभ्यास है, जिसमें राष्ट्र के हर नागरिक, हर संस्था और हर सत्ताधारी की साझा जिम्मेदारी है।

हमारा संविधान, अपनी प्रस्तावना के साथ, हमसे एक वादा करता है न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का। संवैधानिक नैतिकता उस वादे को निभाने की हमारी सामूहिक प्रतिबद्धता का नाम है। यह प्रतिबद्धता तब तक अधूरी है जब तक कि एक दलित बच्चा स्कूल में भेदभाव से डरता है, जब तक एक अल्पसंख्यक परिवार अपनी नागरिकता को लेकर असुरक्षित महसूस करता है, जब तक एक महिला रात के अंधेरे में अकेले चलने से डरती है, और जब तक कोई गरीब न्याय की उम्मीद छोड़ देता है।

इस यात्रा में न्यायपालिका एक मार्गदर्शक रही है, जिसने 'मूलभूत ढाँचे' और 'गरिमामय अस्तित्व' जैसी अवधारणाओं से इस नैतिकता को कानूनी शक्ति दी है। लेकिन अदालतें आखिरी पनाहगाह हैं। असली काम तो हमें करना है मतदान केंद्रों पर, स्कूलों में, दफ्तरों में, सोशल मीडिया पर और अपने घरों के भीतर।

आज भारत एक नए युग में प्रवेश कर रहा है, जहाँ आर्थिक महत्वाकांक्षाएँ, तकनीकी क्रांति और वैश्विक प्रभाव नए अवसर और नई चुनौतियाँ दोनों लेकर आए हैं। ऐसे में, संवैधानिक नैतिकता हमारा एकमात्र कम्पास है जो यह सुनिश्चित कर सकता है कि हमारी प्रगति केवल आँकड़ों और इमारतों तक सीमित न

रहे, बल्कि वह हर नागरिक के जीवन में गरिमा और सम्मान लाए। यह यात्रा कभी खत्म नहीं होगी, क्योंकि एक न्यायपूर्ण समाज का निर्माण हमेशा एक कार्य-प्रगति ही रहेगा। लेकिन इस यात्रा में हर कदम मायने रखता है।

---

9. प्रश्नोत्तर (Q&A)

प्रश्न 1: क्या संवैधानिक नैतिकता और राष्ट्रवाद में टकराव हो सकता है?
उत्तर: यह एक गहरा प्रश्न है। संकीर्ण या उग्र राष्ट्रवाद, जो एक विशेष धर्म, संस्कृति या भाषा को राष्ट्र की एकमात्र पहचान बताता है, निश्चित रूप से संवैधानिक नैतिकता से टकराता है। क्योंकि हमारा संविधान बहुलवाद, धर्मनिरपेक्षता और सभी नागरिकों की समानता पर आधारित है। संवैधानिक नैतिकता ही सच्चे और समावेशी राष्ट्रवाद का आधार है। यह उस राष्ट्रवाद का समर्थन करती है जो संविधान के मूल्यों को मजबूत करे, न कि उन्हें कमजोर करे। एक राष्ट्र तब तक मजबूत नहीं हो सकता जब तक उसके भीतर के समुदाय असुरक्षित या हीन महसूस करें।

प्रश्न 2: क्या यह सिद्धांत आम लोगों के लिए नहीं, सिर्फ नेताओं, न्यायाधीशों और अधिकारियों के लिए है?
उत्तर: बिल्कुल नहीं। यह एक आम गलतफहमी है। संवैधानिक नैतिकता की सबसे पहली और सबसे महत्वपूर्ण कसौटी तो आम नागरिकों के व्यवहार में ही है। जब हम दूसरे के अधिकारों का सम्मान करते हैं, भेदभावपूर्ण बातों का विरोध करते हैं, सही उम्मीदवार को वोट देते हैं, या सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करते हैं तो हम संवैधानिक नैतिकता को जी रहे होते हैं। नेता और न्यायाधीश तो समाज के प्रतिबिंब होते हैं। एक जागरूक और नैतिक नागरिक समाज ही अच्छे नेताओं और मजबूत संस्थाओं को जन्म देता है।

प्रश्न 3: क्या सोशल मीडिया पर अपनी बात रखना संवैधानिक नैतिकता का हिस्सा है?
उत्तर: हाँ, बिल्कुल। अनुच्छेद 19(1)(क) हमें अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता देता है। लेकिन संवैधानिक नैतिकता हमें यह भी सिखाती है कि हर अधिकार के साथ एक जिम्मेदारी जुड़ी है। सोशल मीडिया पर बात रखते समय हमें यह सुनिश्चित करना चाहिए कि हमारी बात तथ्यों पर आधारित हो, किसी की गरिमा या सुरक्षा के लिए खतरा न हो, और घृणा या हिंसा को न भड़काए। गलत सूचना फैलाना, धमकाना या सांप्रदायिक घृणा का प्रचार करना संवैधानिक नैतिकता का घोर उल्लंघन है, भले ही वह 'स्वतंत्रता' के नाम पर क्यों न किया जा रहा हो।

प्रश्न 4: जब सरकार के पास बहुमत है, तो क्या उसे अपनी मनमर्जी करने का अधिकार नहीं है? हम उसे क्यों रोकें?

उत्तर: लोकतंत्र में बहुमत सरकार चलाने का अधिकार देता है, लेकिन यह अधिकार असीमित नहीं है। संविधान ही वह सीमा तय करता है। 'बहुमत का अहंकार' लोकतंत्र का सबसे बड़ा दुश्मन है। संवैधानिक नैतिकता और 'मूलभूत ढाँचे' की अवधारणा का उद्देश्य ही यही है यह सुनिश्चित करना कि बहुमत में आई कोई भी सरकार संविधान की मूल भावना और अल्पसंख्यकों के अधिकारों को नष्ट न कर दे। इसीलिए न्यायपालिका को संविधान संशोधनों की भी समीक्षा करने का अधिकार है।

प्रश्न 5: मैं एक छात्र/गृहिणी/नौकरीपेशा व्यक्ति हूँ, मेरे पास समय नहीं है। मैं क्या कर सकता हूँ?
उत्तर: बड़े कदमों की जरूरत नहीं है। छोटे-छोटे शुरुआती कदम मायने रखते हैं:
1. शपथ लें: संविधान की प्रस्तावना को एक बार पूरा पढ़ें और उसे समझने की कोशिश करें।
2. एक बातचीत शुरू करें: आज ही परिवार या दोस्तों से संविधान के किसी एक मूल्य (जैसे समानता या धर्मनिरपेक्षता) पर पाँच मिनट की चर्चा शुरू करें।
3. एक गलतफहमी दूर करें: अगली बार जब आपको सोशल मीडिया पर कोई संविधान के बारे में झूठी बात दिखे, तो उसे फैलाने के बजाय, उसके बारे में खुद शोध करें या सही जानकारी वाला लिंक शेयर करें।
4. एक कार्य करें: अपने आस-पास किसी ऐसे व्यक्ति की मदद करें जिसके साथ भेदभाव हो रहा हो, चाहे वह एक बोलना ही क्यों न हो। यही संवैधानिक नैतिकता का प्रथम पाठ है।

---

10. अंतिम विचार

संवैधानिक नैतिकता कोई धुंधली, दार्शनिक चीज नहीं है। यह बहुत ठोस है। यह तब जीवंत हो उठती है जब कोई नागरिक सूचना का अधिकार (RTI) के तहत सवाल पूछता है। यह तब दिखती है जब कोई अदालत किसी कमजोर वर्ग के पक्ष में फैसला सुनाती है। यह तब सामने आती है जब एक शिक्षक बच्चों को संविधान के मूल्यों के बारे में पढ़ाता है। लेकिन यह तब भी घायल होती है जब हम भीड़ की हिंसा में खामोश रहते हैं, जब हम घृणा फैलाने वाले संदेशों को '**फॉरवर्ड**' करते हैं, या जब हम यह सोचकर चुप रह जाते हैं कि "च**लने दो, हमसे क्या मतलब।**"
हमारा लोकतंत्र एक जीवित प्राणी है। संविधान उसका शरीर है, और संवैधानिक नैतिकता उसकी आत्मा। शरीर तो मौजूद रहेगा, लेकिन अगर आत्मा कमजोर पड़ गई, तो वह प्राणी बेजान हो जाएगा। हमारी सामूहिक नैतिक चेतना ही इस आत्मा का पोषण करती है। यह कोई एक बार की उपलब्धि नहीं, बल्कि हर पीढ़ी द्वारा दोहराया जाने वाला एक सतत अभ्यास है। यह अभ्यास आपसे और मुझसे शुरू होता है।

---

11. कार्रवाई का आह्वान

संवैधानिक नैतिकता कोई किताब में बंद विचार नहीं है। यह हर दिन हमारे छोटे-छोटे फैसलों में जीवित या मृत होती है। सवाल यह नहीं है कि सरकार क्या कर रही है, बल्कि यह है कि हम क्या कर रहे हैं।

• क्या हम भेदभाव पर चुप रहते हैं या सवाल उठाते हैं?

• क्या हम अफवाह को आगे बढ़ाते हैं या सच की जाँच करते हैं?

• क्या हमारा वोट किसी नफरत के लिए जाता है या संविधान के मूल्यों के लिए?

• अगर यह लेख आपको सोचने पर मजबूर करता है, तो यहीं रुकिए मत।

• इसे साझा करें। चर्चा शुरू करें। असहमति से डरें नहीं, लेकिन गरिमा न छोड़ें।

• अपने बच्चों, दोस्तों और सहकर्मियों से संविधान की बात करें, केवल राजनीति की नहीं।

• संविधान सरकार का दस्तावेज नहीं, हम सबका साझा संकल्प है। और उसकी आत्मा संवैधानिक नैतिकता तभी बचेगी, जब हम उसे रोज़मर्रा के जीवन में जीएँगे।

---

12. संदर्भ एवं अतिरिक्त पठन

· भारत का संविधान (मूल पाठ): भारत सरकार का पोर्टल

· संविधान सभा की बहसें: संसदीय डिजिटल पुस्तकालय

· सर्वोच्च न्यायालय के महत्वपूर्ण निर्णय:

· केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य (1973)

· नवतेज सिंह जौहर बनाम भारत संघ (2018)

· इंदिरा साहनी बनाम भारत संघ (1992)

· एस.आर. बोम्मई बनाम भारत संघ (1994)

· जस्टिस के.एस. पुट्टस्वामी (निजता) बनाम भारत संघ (2017)